Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

स्त्रीवादी आंदोलन और सिद्धांत

इन्दुबाला यदुवंशी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
श्री गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मालटारी,आजमगढ़,
सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय,
जौनपुर,उत्तर प्रदेश।

सारांश– उग्रवादी स्त्रीवाद स्त्री के जीवनानुभवों को आधार बनाकर निर्मित किया गया है। उग्रवादी स्त्रीवादियों ने स्त्रीशोषण कर आधार पितृसत्ता में खोजा और उसे चुनौती प्रस्तुत की है। उग्रवादी स्त्रीवाद मानता है कि स्त्री शोषण में पितृसत्ता और राज्य का निर्माण पितृसत्तात्मक ढांचे में हुआ है और राज्य कानून आदि के द्वारा पितृसत्तात्मक ढांचे को बनाये रखता है। उग्रवादी स्त्रीवादियों का यह भी मानना है कि नारी के शोषण का एक बड़ा हिस्सा पारिवरिक संरचना के दायरे में होता है।

मुख्यशब्द– उग्रवादी, स्त्रीवाद, पितृसत्तात्मक, पारिवरिक, संरचना, सामाजिक।

पश्चिम में स्त्रीवादी आंदोलन का उदय मूलतः औद्योगिक क्रांति के साथ हुआ। उससे पहली बार धर्मशास्त्रों की सत्ता और सामाजिक जकड़बंदियों को प्रश्नांकित किया और मानव–मानव में समता समानता की बात की। वास्तव में नारीवादी आंदोलन की शुरुआत सन् 1848 में बोस्टन टी पार्टी से हुई थी। टी पार्टी में शामिल कुछ महिलाओं ने स्त्री अधिकरों के लिए एक घोषणा पत्र जारी किया। इसमें ‘स्वतंत्रता’, ‘कानूनी समानता’, ‘व्यवसायिक समानता’, ‘मुआवजा’, ‘समान रोजगार’ और ‘मताधिकार’ की मांग शामिल थी।

पश्चिम के आंदोलन को दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। देवेन्द्र इस्सर के अनुसार ‘‘प्रथम लहर का उद्‌देश्य स्त्रियों के लिए मताधिकार प्राप्त करना था। 1920 में इस अधिकार की प्राप्ति के पश्चात् स्त्रीवाद की दूसरी लहर साठ के दशक में चली। यह दशक सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांतियों का दौर था। स्त्रीवाद इन्ही आन्दोंलनों में से एक अहम परिवर्तन की प्रक्रिया सिद्ध हुआ जिसने सत्ता विशेष रूप में पितृसत्ता तथा विवाह प्रणाली को चुनौती दी।’’[1]

सन् 1848 में ही सिनका फालस में हुए महिलाओं के सम्मलन में एलिजाबेथ केडी स्टेनन और सूसन बी एंथनी ने अमरीका स्वतंत्रता की घोषणा के मूल्यों को महिलाओं के ऊपर भी लागू करने की मांग की। जल्द ही अमेरिका में गृह युद्ध की शुरूआत हो जाने के कारण आंदोलन में शून्यता व्याप्त हो गयी। स्त्रीवादी आंदोलनकारियों ने उस पूरे दौर में स्त्री की स्थिति अवस्थित व उसके समान स्त्रियों में गुलामी की बेड़ियों में जकड़े दासों पर भी विचार किया। कुछ आंदोलनकारी महिला अधिकारों व दासों के अधिकारों को एक साथ जोड़कर एक वृहत्तर लड़ाई के पक्ष में थे। उनका मानना था कि महिलाएं और दास प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पितृसत्ता के ही गुलाम हैं। क्योंकि पितृसत्ता श्रेष्ठ पुरुष ही हेजमनी बनाए रखती है। इसलिए दासों को भी मताधिकार मिलना चाहिए। कुछ आंदोलनकारियों का दासों को लेकर मत था कि दास का मामला नस्लीय श्रेष्ठता से जुड़ा है। इसलिए उसे स्त्रीवादी आंदोलन में शामिल नहीं किया जा सकता।

इस वैचारिक मतभेद के चलते स्त्रीवादी आंदोलन सन् 1869 में दो भागों में विभाजित हो गया। आंदोलन में फूट के बाद 'मई 1869' एलिजाबेथ केडी स्टेनन और सुसान बी एन्थनी ने 'नेशनल वूमेन सरफेज' को संगठित किया और महिलाओं के अधिकारों के लिए व्यापक सवाल उठाए और उन्हें मताधिकार के प्रश्न से जोड़ा। स्त्रीवादी आंदोलन में विघटन के बाद लूसी स्टोन और अन्य महिलाओं ने मिलकर 'अमेरिकन वूमने सरफेज एसोसिएशन' का गठन किया। जो चर्च, विवाह आदि विवादास्पद मुद्‌दे से दूर अपने को महिलाओं के मताधिकार के सवालों पर केन्द्रित किया।

सन् 1890 में मै एक लम्बे संघर्ष के बाद दोनों सघटनों ने आपस में विलय कर लिया और महिला अधिकारों के मुद्‌दे पर अपने को फोकस किया। इसी दौरान सन् 1813 में महिला मताधिकारों को लेकर एलिसपॉउल ने 'कांग्रेसनल यूनियन' नामक रेडिकल समूह की स्थापना की इस संगठन ने अनेकों विशाल प्रदर्शन 'भूख हड़ताल और जुलूस निकाले तथा अनेको गिरफ्तारियाँ दीं।

52 वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद 26 अगस्त सन् 1920 को अमरीकी महिलाओं को उनके मताधिकार का कानूनी अधिकार मिला। इसे प्राप्त करने के लिए स्त्रीवादियों को एक लम्बा संघर्ष करना पड़ा, ''पुरुष वोट से के जनमत संग्रह के लिए 56 अभियान मताधिकार संशोधन पर वोटिंग कराने के लिए, विधन सभाओं पर दबाव डालने के लिए 480 अभियान, महिला मताधिकार को राज्य के संविधान में लिखने के राज्य के संवैधानिक कन्वेन्शनों को राजी करने के लिए 47 अभियान, राज्य पार्टी की कन्वेन्शनों में महिला अधिकारों के सवाल को शामिल करवाने के लिए 277 अभियान, अध्यक्षीय पार्टी कन्वेन्शनों को पार्टी के मंचों पर महिला मताधिकारों के सवाल को स्वीकारने के लिए राजी करने के लिए 30 अभियान करने पड़े।''

स्त्रीवादी आंदोलन का दूसरा चरण साठ के दशकों के बाद शुरू हुआ।, इसने सामाजिक व राजनीतिक स्थितियों को अपना केन्द्रीय बिन्दु बनाया स्त्रीवादी आंदोलन कारियों में समाज में स्त्री की दोयम दर्जे की प्राप्त स्थिति के खिलाफ व संसदीय राजनीति में हिस्सेदारी के लिए आवाज उठायी। इसी दौर में मशहूर फ्रेंच लेखिका

सीमोन द बोआ ने स्त्रियों की स्थिति पर अपनी प्रमुख पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' लिखी और बताया कि– ''औरत को औरत होना सिखाया जाता हैं औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बनाया जाता है।''[2] सिमोन ने स्त्रीवाद को एक व्यापक नजरिए से देखा और नीग्रो की स्थितियों की तुलना स्त्रियों से की और दोनों की स्थितियों को समान बताया। उन्होंने लिखा है कि– ''दोनों ही जातियाँ आज पितृसत्ता से मुक्त हो रही हैं और इनके भूतपूर्व स्वामी इनहें पुरानी जगह रखना चाहते हैं। उन्हीं जगहों में जिनका चुनाव मालिक वर्ग ने किया था। दोनों ही क्षेत्रों में मालिक यथास्थिति के प्रशंसक हैं।''[3]

स्त्रियों की हेय स्थिति और समाज में प्राप्त दोयम दर्जे के विरूद्ध स्त्रीवाद बदलाव चाहता है। मशहूर पाश्चात्य इतिहासकार लिंडा गार्डन के शब्दों में– ''नारीवाद नारी के गौण स्थान का विश्लेषण मात्र है, जिसका हेतु उसकी स्थिति में बदलाव लाना मात्र है।''[4] बीसवीं सदी के स्त्रीवादी आंदोलन में बोउवा, वर्जिनिया कान आदि का नाम प्रमुख है।

भारत में स्त्रियों की स्थिति को लेकर चिंता नवजागरणकाल में ही दिखाई देने लगती है। नवजागरण के उदय के साथ ही पश्चिम बंगाल में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए व्यापक पैमाने पर जनसुधार आंदोलन चलाए गए। जिसमें बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठायी गयी तथा विधवा पुनर्विवाह और स्त्रीशिक्षा को लेकर समाज को जागरूक करने की ललक दिखाई देती है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा का जमकर विरोध किया और उसके खिलाफ पत्रिकाओं में अनेकलेख लिखे। उन्होंने शास्त्रों व पुराणों से उद्धरण देकर सती प्रथा को शास्त्र विरूद्ध बताया और ब्रिटिश सहायता से सती प्रथा के खिलाफ कानून बनाया। ''1817 में सुप्रीम कोर्ट के मुख्य पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार ने घोषणा की कि सती की कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं हैं इसके एक वर्ष बाद यानी 1818 में बंगाल में तत्कालीन प्रांतीय गवर्नर विलियम बैटिंक ने प्रांत में सती प्रथा पर रोक लगा दी। सारे भारत में इस निषेध को फैलने में 11 वर्ष लगे। विलियम बैटिंक 1929 में जब भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने सती निर्मूलन एक्ट पास किया।''[5] इस एक्ट के पास होने के बाद रूढ़वादियों ने इसका जमकर विरोध किया। जिसके चलते दस वर्ष बाद इस कानून में संशोधन कर जबरन व स्वैच्छिक सती में भिन्नता दर्शायी गयी।

भारतीय समाज में विधवा स्त्रियों की स्थिति काफी दयनीय थी। उन्हें अशुभ व अमंगलकारी माना जाता था। उन्हें पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। सन् 1850 में विधवा पुनर्विवाह के लिए पं. ईश्वरचंद विद्यासागर ने आंदोलन चलाया और बांग्ला भाषा में विधवा विवाह के समर्थन में एक पुस्तिका प्रकाशित करायी और विधवा विवाह को शास्त्र सम्मत बताया। विद्यासागर ने अपनी पुस्तक का अंग्रजी में अनुवाद कराया और अंग्रेजी अधिकारियों के सलाह पर कोर्ट में याचिका सन् 1855 में दायर की। जिसके चलते सन् 1856 मे विधवा विवाह अधिनियम पारित हुआ जो भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति के सुधार में कानूनी रूप से एक युगांतकारी कदम था। लेकिन रूढ़िवादियों के चलते यह कानून व्यावहारिक रूप से प्रयोग न हो सका। विधवा विवाह अधिनियम पारित होने के चालीस वर्षो बाद

सन् 1890 में यह तथ्य सामने आया कि– ''विधवा पुनर्विवाह कानून बनने के बाद विगत 40 वर्षों में कुल पाँच सौ विधवा पुनर्विवाह हुए। हालांकि उस समय तक समाज सुधार संगठन कुकुरमुत्तों की भाँति सारे भारत में फैल चुके थे और प्रत्येक का प्रण था कि वे विधवा पुनर्विवाह के लिए अभियान चलाएंगे किन्तु उनकी तमाम कवायद के बावजूद वे इतना ही हासिल कर सके। इसके अलावा ऐसा लगता है कि ये पाँच सौ विधवा पुनर्विवाह भी बाल विधवाओं या यह कह लीजिए 'कुँवारी विधवाओं' के थे। ऊँची जातियों की वे विधवाएँ जो कुँवारी नहीं थीं, उन्होंने तो पुनर्विवाह किया और न ही उनका पुनर्विवाह हो सका।''[6] भारतीय नवजागरण के अग्रदूतों में राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फूले, ईश्वरचन्द विद्यासागर, भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों के विरूद्ध आवाज उठायी और स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। ''सन् 1852 तक फूले ने तीन कन्या पाठशालाएँ तथा अछूतों के लिए एक स्कूल खोला।''[7]

राष्ट्रवादी आंदोलन में स्त्री की भूमिका प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। महात्मा गांधी के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में पदार्पण के बाद स्त्रियां कुछ जगहों पर नेतृत्वकारी भूमिका में आयीं। जिनमें उर्मिला, ऐनीबेसेंट, सरोजनी नायडू, बसंती देवी, हीराबाई टाटा, सरोजनी नायडू, लतिका घोष, उषा मेहता आदि का नाम प्रमुख है। महात्मा गांधी ने स्त्री को भोग और वस्तु समझी जाने वाली प्रवृत्ति का विरोध किया। लेकिन वे स्त्री–पुरुष संबंधें में परम्परावादी दृष्टिकोण के हिमायती थे। जिसके चलते नारीवादियों ने गांधी जी से पुरुष संबंधों पर अपनी असहमति दर्ज की है। राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ–साथ ही स्त्री के अलग–अलग रूपों का महिमामंडन किया गया। राधा कुमार ने लिखा है कि– ''20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री के माँ रूप का प्रतीक उभरा नारी शक्ति की अवधारणा के अनुसार राष्ट्रमाता के रूप में, रक्षा करने वाली उग्र रूपधारिणी महाकाली के रूप में तथा गांधीवादी विचारधरा के अनुसार स्त्री को कष्ट सहनेवाली सहनशील माँ के रूप में देखा गया।''[8] मातृशक्ति का बचान करते हुए सरोजनी नायडू व मैडम कामा ने पुरुषसत्ता को चुनौती देते हुए कहा कि– ''याद रखो जो हाथ पालना झूलाते हैं वही दुनिया पर राज करते हैं।''[9]

दहेज प्रथा भारतीय समाज की एक सामाजिक कुरीति है, जिसके कारण स्त्रियों के उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। सत्तर के दशक में स्त्रीवादियों ने दहेज प्रथा के खिलाफ अभियान चलाया जिसके फलस्वरूप सन् 1978 में दहेज निषेध अधिनियम 1978 पारित हुआ।

दुनिया भर में कोई 'एक स्त्रीवाद नहीं रहा हैं समय–समय पर इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। स्त्रीवाद के कई प्रकार हैं जैसे उदारवादी स्त्रीवाद, उग्रवादी स्त्रीवाद, समाजवादी स्त्रीवाद, दलित स्त्रीवाद आदि। उदारवादी स्त्रीवादी, समानअवसर व समाज सुधार पर जोर देते हैं। वे कुछ कानूनी सुधारों मसलन गर्भपात, विवाह और मताधिकार की वकालत करता है। उदारवादी स्त्रीवादी नीति पूंजी का विरोध नहीं करते बल्कि उसमें स्त्री की हिस्सेदारी की बात करते हैं। इसलिए वे पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध नहीं करते हैं। उदारवादी स्त्रीवादी मेरी बालस्टान काफ्ट ने सबसे पहले रेखांकित किया कि ''स्त्रियां बुद्धि के मामले में पुरुषों से कमजोर हैं अथवा छुईमुईपन, नाजुकता तथा सतहीपन उनका नैसर्गिक गुण है। यदि पुरुष और महिलाएं बुद्धि के समान अधिकारी हैं तो उसका प्रयोग करने की शिक्षा भी

उन्हें समान रूप से दी जानी चाहिए। स्त्रियां सिर्फ पुरुष के भोग की वस्तु नहीं हैं, बल्कि एक स्वतंत्र मानुषी हैं जो बौद्धिक शिक्षा पाने में समर्थ तथा उसका अधिकारी भी हैं... चूंकि पुरुषों और महिलाओं की समान मानसिकता ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के अधिकार की हिस्सेदारी पर आधरित हैं, इसलिए इन दोनों लिंगों के नैसगिर्कक गुण भी समान होने चाहिए।''

उदारतावादियों ने सामाजिक स्तर पर भेदभाव करने की वकालत की, लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री का जो शोषण है, समाज में उपस्थित वर्गीय व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, पुरुष की प्रधानता पर गंभीरता से विचार नहीं किया।

समाजवादी नारीवाद के जनक फेडरिक एंगेल्स व मार्क्स है। मार्क्स ने नारी शोषण के आधार को वर्ग संघर्ष में देखा। एंगेलस ने स्त्री शोषण का आधार आर्थिक असमानता को बताया जिसके चलते स्त्री की हैसियत परिवार में मजदूर से ज्यादा नहीं होती है।

एंगेल्स का मानना है कि– आधुनिक वैयक्तिक परिवार, नारी की प्रत्यक्ष या परोक्ष घरेलू दासता पर आधारित है। स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करे और इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाय।

उग्रवादी स्त्रीवाद स्त्री के जीवनानुभवों को आधार बनाकर निर्मित किया गया है। उग्रवादी स्त्रीवादियों ने स्त्रीशोषण कर आधार पितृसत्ता में खोजा और उसे चुनौती प्रस्तुत की है। उग्रवादी स्त्रीवाद मानता है कि स्त्री शोषण में पितृसत्ता और राज्य का निर्माण पितृसत्तात्मक ढांचे में हुआ है और राज्य कानून आदि के द्वारा पितृसत्तात्मक ढांचे को बनाये रखता है। उग्रवादी स्त्रीवादियों का यह भी मानना है कि नारी के शोषण का एक बड़ा हिस्सा पारिवरिक संरचना के दायरे में होता है। इसलिए वे पारम्परिक पारिवारिक संस्था को समाप्त करने की वकालत करता है। ''विद्रोही नारीवादी परिवार के ढांचे मात्र को ही नारी के लिए एक कारगार के रूप में देखते हैं। वे परिवार के इस ढांचे को ही तोड़ देने की दलील देते हैं।''[10]

संदर्भ सूचीः–

1. देवेन्द्र इस्सर, स्त्री मुक्ति के प्रश्न, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृ. 29
2. प्रभाखेतान, स्त्री उपेक्षिता, हिंद पाकेट बुक, नई दिल्ली, पृ. 52
3. सं. डॉ. एम. फिरोज खान, डॉ. शुगुफ्ता नियाज़, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, पृ. 10–11
4. फेमनिज्म एण्ड रिसेंट फिक्शन इन इंग्लिश–सुशील सिंह, पृ. 8
5. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 27
6. वही, पृ. 41
7. वही, पृ.

8. वही, पृ.
9. वही, पृ.
10. नारी प्रश्न, सरला माहेश्वरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 44